IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.301
Volume 3, Issue 1, November 2023

पं. दीनदयाल उपाध्याय के दर्शन पर आधारित शैक्षिक प्रारूप का विवेचनात्मक अध्ययन

डॉ. गीतू गुप्ता व डॉ. युद्धवीर सिंह

विभागाध्यक्ष, स्ववित्तपोषित बी. एड., स्वतंत्रता संग्राम सेनानी थान सिंह रावत राजकीय महाविद्यालय, नैनीडांडा, पौड़ी गढ़वाल
प्राचार्य, कुकरेजा इन्स्टीट्यूट ऑफ टीचर एजूकेशन, देहरादून

सारांश

किसी समाज की शिक्षा मुख्य रूप दर्शन का प्रभाव बड़ा स्थाई होता है। ऐसे में पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी के शैक्षिक व दार्शनिक विचारों की छाप शिक्षा के स्वरूप पर भी दिखलाई पड़ता है। पं0 दीनदयाल जी अपने शैक्षिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये एक नियोजित व व्यवस्थित पाठ्यक्रम की योजना पर बल देते हैं। उनका मानना है कि शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये ऐसे पाठ्यक्रम की आवश्यकता है जो समयानुसार व उपयोगितानुसार व्यवस्थित व नियोजित किया गया हो। पण्डितजी ने अपने पाठ्यक्रम नियोजन में प्राचीन, नवीन, वैज्ञानिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक और भौतिक विषयों को अत्यन्त मौलिक ढंग से समन्वित किया है। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि सहपाठ्यचारी क्रियायें बालक के विकास में बड़ा योगदान देती है अतः खेलकूद और अभिनय आदि को पाठ्यचर्या में स्थान देना चाहिये। इनके अनुसार शिक्षण पद्धतियों का चयन बहुत समझदारी से करना चाहिये। इसके साथ ही शिक्षक प्रभावपूर्ण तरीके से छात्रों को अपने विषय का ज्ञान दे सके। उन्होंने अपनी शिक्षण विधियों में प्राचीन और पाश्चात्य या नवीन विधियों को स्थान दिया है। विद्यालय की स्थापना खुले और स्वच्छ वातावरण में की जाये तथा विद्यालय को बहुत ही व्यवस्थित, अनुशासित एवं कुशलतापूर्वक अपने कार्य संगठन को संचालित करने वाला होना चाहिये। पंडित दीनदयाल जी के अनुसार शिक्षक–शिक्षार्थी सम्बन्ध प्राचीन काल से चले आ रहें हैं उनका मत है कि गुरू व शिष्य के मध्य सम्बन्ध बहुत ही आत्मीय, स्नेहिल, गरिमामय, मित्रवत्, पिता-पुत्र तुल्य तथा सम्मानजनक होने चाहिये।

संकेत शब्द – पाठ्यक्रम, शिक्षणविधियाँ, अनुशासन, पाठ्यसहगामी क्रियायें, स्त्रीशिक्षा

प्रस्तावना – किसी समाज की शिक्षा मुख्य रूप से उस समाज के स्वरूप, उसके दार्शनिक होती है। इन पर दर्शन का प्रभाव बड़ा स्थाई होता है। ऐसे में पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी के शैक्षिक व दार्शनिक विचारों की छाप शिक्षा के स्वरूप पर भी दिखलाई पड़ता है। दीनदयाल जी का मानना था कि मूल्य रहित जीवन, जीवन है ही नहीं। मनुष्य के आचार विचार के सम्बन्ध में उपाध्याय जी का स्पष्ट मत है कि मनुष्य को सदैव सत्य का पालन करना चाहिये और दीन–हीनों की सेवा करनी चाहिये। सत्य और सेवा को ये जीवन के आधारभूत मूल्य मानते थे, इनकी दृष्टि से सत्य वह है जिससे व्यष्टि और समष्टि दोनों का हित होता है। इनकी दृष्टि से मनुष्य को मन, वचन और कर्म से शुद्ध होना चाहिये तथा ये परसेवा को सबसे बड़ा मूल्य मानते थे। पण्डित दीनदयाल जी के अनुसार शिक्षा का सम्बन्ध जितना व्यक्ति से है उससे अधिक समाज से है अतः शिक्षा, समाज की आवश्यकताओं, अपेक्षाओं तथा आकांक्षाओं के अनुरूप होनी चाहिये अर्थात् शिक्षा द्वारा बालक को इस योग्य बनाना चाहिये जिससे वह अपने जीवन के आदर्शों और मूल्यों की स्थापना में सक्षम हो सके। पं0 दीनदयाल जी ने भारतीय दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुये तथा पाश्चात्य दृष्टिकोण के समन्वय पर विचार देते हुये व्यक्ति के जीवन में पुरूषार्थों की प्राप्ति, उत्पादनशीलता का

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.301
Volume 3, Issue 1, November 2023

विकास, चरित्र निर्माण, नैतिकता का विकास, आन्तरिक व सामाजिक विकास, जीवन मूल्यों का विकास व राष्ट्रीयता की भावना के विकास के साथ–साथ उत्पादनशीलता में वृद्धि, सांस्कृतिक व आध्यात्मिक उन्नति, कुशल नेतृत्व के गुणों का विकास एवं सर्वांगीण विकास आदि उद्देश्यों पर बल दिया। पं0 दीनदयाल जी अपने शैक्षिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये एक नियोजित व व्यवस्थित पाठ्यक्रम की योजना पर बल देते हैं। उनका मानना है कि शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये ऐसे पाठ्यक्रम की आवश्यकता है जो समयानुसार व उपयोगितानुसार व्यवस्थित व नियोजित किया गया हो। पण्डितजी ने अपने पाठ्यक्रम नियोजन में प्राचीन, नवीन, वैज्ञानिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक और भौतिक विषयों को अत्यन्त मौलिक ढंग से समन्वित किया है।

पाठ्यक्रम – शिक्षण क्रियाओं का आधार पाठ्यक्रम होता है। पाठ्यक्रम की अवधारणा विस्तृत एवं व्यापक है। इसमें वे समस्त अनुभव आ जाते हैं, जिन्हें छात्र विद्यालय के तत्वावधान में प्राप्त करता है। इसमें कक्षा में और कक्षा के बाहर अर्जित समस्त शैक्षणिक एवं पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाएँ आ जाती हैं। पाठ्यक्रम का क्रिया एवं अनुभव के रूप में समझा जा सकता है। नियोजित शिक्षा के उद्देश्य निश्चित होते है, इन निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कुछ विषयों का ज्ञान एवं किंयाओं का प्रशिक्षण आवश्यक होता है; अपने सामान्य अर्थ में इसी को पाठ्यक्रम कहते हैं। पाठ्यक्रम शब्द का शाब्दिक अर्थ है पाठ्य+क्रम अर्थात् सीखने या सिखाने की चीजों का संगठन।

पं0 दीनदयाल जी के अनुसार पाठ्यक्रम – 'मनुष्य का प्राकृतिक, सामाजिक, एवं आध्यात्मिक तीनों प्रकार के विकास पर समान रूप से बल दिया है और इनके समुचित विकास के लिए क्रिया प्रधान पाठ्यक्रम का निर्माण करने पर बल दिया है। उन्होंने अपनी भाषा तथा संस्कृति के साथ–साथ राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय महत्व की भाषा एवं संस्कृतियों के ज्ञान पर भी बल दिया। उपाध्याय जी के अनुसार हमें अपने ज्ञान के विभिन्न अंगों के साथ–साथ अंग्रेजी भाषा और पाश्चात्य विज्ञान का अध्ययन करने की आवश्यकता है। हमें प्राविधिक शिक्षा और उन सब विषयों का ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता है, जिनसे हमारे देश के उद्योंगो का विकास हो और मनुष्य नौकरियाँ खोजने की बजाय अपने स्वयं के लिये पर्याप्त धन का अर्जन कर सकें और दुर्दिन के लिये कुछ बचा भी सकें। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि सहपाठ्यचारी क्रियायें बालक के विकास में बड़ा योगदान देती है अतः खेलकूद और अभिनय आदि को पाठ्यचर्या में स्थान देना चाहिये। इनके इस व्यापक दृष्टिकोण के कारण इनके द्वारा निर्मित पाठ्यचर्या बहुत विस्तृत है। पण्डित जी के शैक्षिक विचार के अनुसार पाठ्यक्रम निर्माण के निम्नलिखित सिद्धांत होने चाहिये–

1. पाठ्यक्रम ऐसा हो जिससे शारीरिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों का विकास हो।
2. पाठ्यक्रम ऐसा हो जो किसी रोजगार की शिक्षा दे।
3. विद्यार्थियों की आवश्यकता के अनुसार पाठ्यक्रम में परिवर्तन किया जाए।
4. पाठ्यक्रम में विज्ञान की शिक्षा को सम्मिलित किया जाना जाये।
5. पाठ्यक्रम में क्रियात्मक कार्यों को स्थान दिया जाये।

उपर्युक्त सिद्धांतों के आधार पर पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी ने बालकों को इतिहास, भूगोल, विज्ञान, साहित्य, राजनीतिक विज्ञान पढ़ाने का सुझाव दिया। इसके साथ ही धर्म एवं सत्य की शिक्षा का भी अत्यधिक महत्व बताया। उन्होंने पाठ्यक्रम में क्रियात्मक कार्यों जैसे– कृषि, रोजगार–धन्धों, आदि की शिक्षा पर अत्यधिक बल दिया ताकि व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बन सके। शिक्षा के पाठ्यक्रम में दीनदयाल जी ने इन सब के अतिरिक्त आंग्ल भाषा और पाश्चात्य विज्ञान के अध्ययन और मातृभाषा एवं संस्कृत की शिक्षा को प्रमुख स्थान दिया। उपाध्याय जी ने शिक्षा की पाठ्यचर्या की कोई क्रमबद्ध रूपरेखा तो प्रस्तुत नहीं की परन्तु उसके निर्माण के सम्बन्ध में जो सुझाव दिए उनसे स्पष्ट है कि हमारा पाठ्यक्रम हमारे धर्म और संस्कृति पर आधारित होना चाहिये। उन्होंने स्पष्ट किया कि हमारे धर्म संस्कृति का सही ज्ञान संस्कृत साहित्य से होता है इसलिए भारतीयों को संस्कृत भाषा का ज्ञान अवश्य और अनिवार्य रूप से कराना चाहिये। उपाध्याय जी जानते थे कि उस समय विज्ञान और तकनीकी के ज्ञान के

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.301
Volume 3, Issue 1, November 2023

लिए अंग्रेजी भाषा जानना अति आवश्यक था इसलिए उन्होंने अंग्रेजी भाषा की शिक्षा पर भी बल दिया। इस सम्बन्ध में इन्होंने कहा कि अंग्रेजी तथा अन्य विदेशी भाषाएँ इस उद्देश्य से पढ़ाई जाएँ कि भारतीय साहित्य विज्ञान तथा भाषा में उनसे भली प्रकार सहायता मिल सके। दीनदयाल जी के विचारों के आधार पर स्पष्ट है कि पाठ्यचर्या तो उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन होती है। पण्डित जी ने शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु एक विस्तृत पाठ्यचर्या का विधान प्रस्तुत किया। उपाध्याय जी शिक्षा को जीवन का एक रूप समझते थे इसलिए उनका मानना था कि पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिये जो जीवन की सच्ची परिस्थितियों को प्रकट करे तथा साथ ही बालकों को इस प्रकार तैयार करे कि वे बिना किसी भय के जीवन के संघर्षों का सामना कर सकें। अतः पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए, जो हमारे प्रतिदिन के जीवन से सम्बन्धित हो ताकि यह हमें उन लोगों के मध्य स्थापित कर सके जिनके बीच हम पैदा हुए हैं और हमें अपना सम्पूर्ण जीवन बिताना है। उपाध्याय जी के अनुसार पाठ्यक्रम शैक्षणिक मूल्यों को ध्यान में रखते हुए अन्त में उपयोगिता के सिद्धांत पर समाप्त होना चाहिए। पण्डित जी शिक्षा को एक पूर्णता के रूप में मानते हैं, इनके अनुसार शिक्षा वही है जो जीवन के सभी मूल्यों को पूर्ण करने में सक्षम आवश्यक है। पं0 दीनदयाल जी ने प्राचीन और नवीन, विज्ञान और दर्शन, तथा अध्यात्म और भौतिकता के बीच अत्यंत मौलिक ढंग से समन्वय स्थापित कर ऐसे पाठ्यक्रम को प्रतिपादित किया जो जीवन को वास्तविक सुखी बनाने के लिए रोटी ही नही, आध्यात्मिक जरूरत को भी पूरा करता है। पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी ने शैक्षिक पाठ्यक्रम के अतिरिक्त बालक के शारीरिक व मानसिक विकास के साथ–साथ सृजनात्मकता व कल्पना शक्ति के विकास के लिए विभिन्न शारीरिक क्रियाओं यथा–खेल कूद, व्यायाम, योग, ध्यान, तथा मानसिक क्रियायें जैसे– वाद–विवाद प्रतियोगिता, विभिन्न प्रतियोगिताएँ, भ्रमण, सामाजिक व सामुदायिक कार्यों को भी महत्व दिया है।

पाठ्यसहगामी क्रियायें – पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी ने शैक्षिक पाठ्यक्रम के अतिरिक्त बालक के शारीरिक व मानसिक विकास के साथ–साथ सृजनात्मकता व कल्पना शक्ति के विकास के लिए विभिन्न शारीरिक क्रियाओं यथा–खेल कूद, व्यायाम, योग, ध्यान, तथा मानसिक क्रियायें जैसे– वाद–विवाद प्रतियोगिता, विभिन्न प्रतियोगिताएँ, भ्रमण, सामाजिक व सामुदायिक कार्यों को भी महत्व दिया है। शिक्षण का मुख्य उद्देश्य छात्रों के व्यवहार में परिवर्तन लाना है। इसके लिए शिक्षण की आव्यूह Strategy का प्रयोग किया जाता है जिससे शिक्षण के उद्देश्य प्राप्त किये जाते हैं, परन्तु परम्परा यह रही है कि शिक्षण में प्रस्तुतिकरण के लिए शिक्षण विधियों को प्रयुक्त किया जाता रहा है और शिक्षण को रोचक तथा प्रभावशाली बनाने के लिए दृश्य–श्रव्य सहायक सामग्री का प्रयोग किया जाता रहा है। छात्रों को विषय का ज्ञान कराने के लिए शिक्षण का अत्यन्त महत्व है। शिक्षण वह कला है, जिससे कठिन विषय भी सरल एवं बोधगम्य बन जाता है। शिक्षण के द्वारा प्रत्येक विषय सफल तथा प्रभावषाली ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है, इसके लिए अनेक प्रकार की शिक्षण–विधियों की आवश्यकता होती है। पाठ्यक्रम कितना ही उपयोगी क्यों न हो, विद्यालय का संगठन तथा उसमें प्राप्त सुविधायें कितनी भी सहयोगपूर्ण क्यों न हों, परन्तु यदि शिक्षक का पढ़ाने का ढंग प्रभावशाली नहीं तो शिक्षा के वांछित उद्देश्य प्राप्त नहीं हो सकते। शिक्षण को सार्थक, उद्देश्यपूर्ण, उपयोगी तथा प्रभावशाली बनाने के लिये शिक्षक को किसी न किसी शिक्षण विधि का प्रयोग अवश्य करना पड़ता है। ने कहा है "जिस प्रकार एक सैनिक को लड़ने के लिए हथियारों का ज्ञान आवश्यक है, उसी प्रकार शिक्षक को भी विभिन्न विधियों का ज्ञान आवश्यक है।" शिक्षण विधियों के महत्व को स्पष्ट करते हुए माध्यमिक शिक्षा आयोग 1952–53 ने कहा है– "शिक्षण विधि भले ही वह अच्छी हो या बुरी– शिक्षक तथा छात्र के परस्पर क्रिया–प्रतिक्रिया द्वारा अन्तर्सम्बन्ध स्थापित करती है।"

शिक्षण विधियाँ – "शिक्षण विधि से तात्पर्य शिक्षक द्वारा निर्देशित ऐसी क्रियाओं से है, जिनके परिणाम स्वरूप छात्र कुछ सीखते हैं।" इस प्रकार शिक्षण विधि अनेक कियाओं का एक पुंज है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके परिणाम स्वरूप छात्र ज्ञानार्जन करता है। शिक्षण पद्धति में पाठ्यवस्तु तथा प्रस्तुतीकरण का ढंग प्रमुख पक्ष होता हैं। शिक्षण पद्धति का निर्धारण पाठ्यवस्तु की

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.301
Volume 3, Issue 1, November 2023

प्रकृति के अनुसार किया जाता है। एक सैनिक को जिसप्रकार विभिन्न अस्त्र–शस्त्रों का ज्ञान होना आवश्यक है, उसी प्रकार उसे उन अस्त्र–शस्त्रों के प्रयोग करने की शिक्षण विधियों से अवगत होना भी आवश्यक है, तभी वह युद्ध क्षेत्र में कुछ कर सकता है। इसी प्रकार शिक्षक को विषय वस्तु व पद्धति दोंनो का ज्ञान आवश्यक है।

दीनदयाल जी के अनुसार शिक्षण विधि –

दीनदयाल जी आत्मा की पूर्णता में विश्वास करते थे कि आत्मा सर्वज्ञ है परन्तु मनुष्य को आत्मज्ञान तभी होता है जब उसे भौतिक और आध्यात्मिक दोंनो प्रकार का ज्ञान हो। पण्डित जी ने भौतिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रत्यक्ष, अनुकरण, व्याख्यान, निर्देशन, विचार–विमर्श एवं प्रयोग विधियों का और आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए स्वाध्याय, मनन, ध्यान आदि विधियों का समर्थन किया। इनके आधार पर ही दीनदयाल जी ने शिक्षण विधियों को विभाजित किया क्योंकि पण्डित दीनदयाल जी भारतीय संस्कृति को अत्यधिक महत्व देते थे अतः उन्होंने भारतीय संस्कृति पर आधारित प्राचीन व परम्परागत शिक्षण विधियों को स्वीकार किया, साथ ही उन्हें नया रूप देने की बात कहते हुए बालक के सर्वांगीण विकास के लिए नवीन व क्रियात्मक शिक्षण विधियों को भी प्रतिपादित किया। दीनदयाल जी का मानना था कि छात्रों को परस्पर एवं शिक्षकों के साथ अन्तःप्रक्रिया के अधिक से अधिक अवसर प्रदान किये जाने चाहिए । पंडित जी का विचार था कि आपसी बातचीत एवं विचार विमर्श से समस्याओं को ज्यादा सरलता से समझा व सुलझाया जा सकता है और शिक्षक व छात्रों के मध्य मधुर सम्बन्ध स्थापित किये जा सकते हैं जो कि शिक्षण के लिये आवश्यक है। पंड़ित दीनदयाल जी द्वारा दिये गये विचारों के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि उन्होंने शिक्षा जगत को अविस्मरणीय योगदान दिया तथा अपने विचारों से भारतीय संस्कृति और सभ्यता को महत्व प्रदान किया। उन्होंने अपनी शिक्षण विधियों में प्राचीन व पाश्चात्य या नवीन विधियों को स्थान दिया और छात्रों के संर्वागीण विकास के लिये छात्र केन्द्रित यथा– क्रिया–विधि, प्रश्नोत्तर–विधि, वार्तालाप–विधि तथा शिक्षक केन्द्रित व्याख्यान–विधि, वादविवाद–विधि, प्रश्नोत्तर–विधि आदि को महत्व प्रदान किया।

अनुशासन – पं0 दीनदयाल जी शिक्षा व्यवस्था में अनुशासन को बहुत महत्वपूर्ण स्थान देते थे। वे शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों को ही अनुशासित देखना चाहते थे। अनुशासन को ये बाह्य व्यवस्था के रूप में नहीं अपितु आन्तरिक भावना के रूप में स्वीकार करते थे। दीनदयाल जी आत्मानुशासन के पक्ष में थे उनके अनुसार बालकों को आत्मनुशासन या स्वानुशासन से ही से ही सीखना चाहिये। स्वानुशासन के विकास के लिये यह भी आवश्यक समझते थे कि विद्यालयों में खेलकूद तथा अन्य पाठ्य सहगामी क्रियायें आयोजित की जाये। इनका अनुभव था कि इन माध्यमों से छात्र अनुशासन में रहना सीखता है अतः बालकों में आत्मानुशसन की भावना का विकास विभिन्न सहयोगी व सामाजिक भावना से ओत–प्रोत क्रियायें कराकर किया जाना चहिये । जिससे बालकों में आत्मानुशासन का विकास हो सके और बालक आत्म नियंत्रित रहकर उचित कार्य कर सकें। इस बात को बढ़ावा देते हुये उन्होंने कहा– "समाज में मानव की कुछ स्वतंत्रताओं पर मर्यादा आवश्यक होती है अनियंत्रित स्वतंत्रता केवल कल्पना की वस्तु है। हाँ, यह नियंत्रण जितना बाहरी होगा, मानव को कष्टदायी होगा। शिक्षा और संस्कार, दर्शन और आदर्शवाद व्यवहार में मनुष्य को आत्मनियंत्रण सिखाते हैं।" पण्डित दीनदयाल उपाध्याय जी के अनुसार शिक्षक में आन्तरिक ममता और स्वस्थ पारिवारिक भावना का महत्वपूर्ण गुण होता है। उसके साथ–साथ शिक्षक को कर्तव्यनिष्ठ, आत्मानुशासित, निरंहकारी, सामाजिक, नैतिक व चारित्रिक आदि गुणों से परिपूर्ण होना चाहिये। शिक्षार्थी के लिए उन्होंने कर्मठ, आज्ञा मानने वाला, ईमानदार व जिज्ञासू प्रवृति का होना स्वीकार किया है।

गुरू–शिष्य सम्बन्ध – पण्डित जी प्राचीन भारतीय संस्कृति के पक्षधर थे अतः वैदिक गुरू–शिष्यपरम्परा के महत्व को स्वीकार करते थे और मानते थे कि छात्र एवं अध्यापक के मध्य बहुत ही मधुर व सौम्यतापूर्ण सम्बन्ध होने चाहिये। उनका विचार था कि शिक्षक को शिक्षण कार्य व्यवसाय के दृष्टिकोण से नहीं करना चाहिए अपितु अपने अनुजों अर्थात् शिक्षार्थियों को अपने अनुभवों से

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.301
Volume 3, Issue 1, November 2023

परिचित कराने व उनके सर्वांगीण विकास के दृष्टिकोण से करना चाहिये, इसके लिए शिक्षक एवं शिक्षार्थी के मध्य पिता–पुत्र तुल्य तथा सम्मानजनक संबंध होना चाहिये। उसीप्रकार वे शिक्षार्थियों से भी अपेक्षा रखते हैं कि वे ज्ञान प्राप्ति के लिए जिज्ञासू व अपने शिक्षकों के प्रति अधिक कर्तव्यनिष्ठ तथा सम्मानभाव रखने वाले होने चाहिये। पं0 दीनदयाल जी के विचार थे कि शिक्षक एवं शिक्षार्थी के मध्य संबंध मित्रवत्, कर्तव्य कठोर, पथप्रदर्शक, पिता–पुत्र तुल्य तथा सम्मान जनक होने चाहिये।

शिक्षा के माध्यम – शिक्षा के माध्यम के सम्बन्ध में पण्डित जी का स्पष्ट मत था और वह यह कि समय की परिस्थितियों के अनुसार शिक्षा का माध्यम मातृभाषा और अंग्रेजी भाषा दोनों को रखा जाए परन्तु शिक्षा का मुख्य माध्यम मातृभाषा को ही बनाया जाए। मातृभाषा के विषय में पण्डितजी के विचार बड़े ही उदात्त तथा स्पष्ट हैं ये मातृभाषा को उतनी ही पोषक तथा जीवनदायिनी समझते हैं जितनी श्वास लेने के लिए वायु। इसलिये इनका विचार है कि बालकों को प्रारम्भ से ही अपनी मातृभाषा के साथ सवतन्त्र कल्पना तथा चिन्तन करने के लिए मुक्त कर देना चाहिये। इनके अनुसार बालक की शिक्षा का माध्यम मातृभाषा ही होनी चाहिये परन्तु उनके विचार में त्रिभाषा नीति भी उचित है। उनके शब्दों में "मेरे विचार में सभी दृष्टियों उपयागी नीति है। यह आवश्यक नही कि तीन भाषाओं का समान स्तर हो, मातृभाषा को सर्वोच्च सथान दिया जाना चाहिये। माध्यमिक शिक्षा पूर्ण करने तक शिक्षा का प्रबंध मातृभाषा में होना चाहिये।

अनिवार्य एवं निशुल्क शिक्षा – पण्डित दीनदयाल उपाध्याय जी मानवता के प्रबल समर्थक थे, मानवतावादियों की भाँति उनका मानना था कि शिक्षा मनुष्य का मूल अधिकार है। उनके अनुसार किसी भी राज्य को अपने नागरिकों के लिए एक निश्चित स्तर तक की शिक्षा की अनिवार्य एवं निःशुल्क रूप से व्यवस्था करनी चाहिये। पण्डित जी जन शिक्षा के भी समर्थक थे और उसके महत्व को स्वीकार करते थे। जन शिक्षा के सन्दर्भ में इनका दृष्टिकोण बड़ा व्यापक था, ये देश के सभी बच्चों, युवकों, प्रौढों और वृद्धों को साक्षर देखना चाहते थे, उन्हें सामान्य जीवन जीने योग्य बनाना चाहते थे, उन्हें अपनी रोजी–रोटी कमाने में दक्ष करना चाहते थे। इनके इन विचारों ने हमें सामान्य अनिवार्य एवं पण्डित जी लोकतन्त्र के कट्टर समर्थक थे, किन्तु उन्हें यह स्वीकार नहीं था कि लोकतन्त्र पाश्चात्य पद्धति का हो। भारतीय परम्परा के साथ सुसंगत रहने वाला लोकतन्त्र उन्हें अभिप्रेरित था। लोकतन्त्र की सफलता के लिए लोकशिक्षण (जनशिक्षण) को वे अनिवार्य मानते थे।

स्त्री शिक्षा – दीनदयाल जी एकात्म मानवतावादी थे और मानवता की भाँति मनुष्य–मनुष्य में
किसी भी आधार पर भेद नहीं करते। इनके अनुसार स्त्रियों को भी पुरूषों की भाँति किसी भी प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार होना चाहिये और राज्य को उनके इस अधिकार को प्राप्त करने में उनकी सहायता करनी चाहिये। इनका स्पष्ट मत है कि अनिवार्य एवं निःशुल्क आधारभूत शिक्षा सभी लड़के–लड़कियों को समान रूप से दी जाए और उच्चशिक्षा उनकी अपनी योग्यता एवं क्षमता के आधार पर दी जाए। उपाध्याय जी अपने देश की स्त्रियों की दयनीय दशा के प्रति बड़े सचेत थे। इन्होंने कहा कि नारी का सम्मान करो, उन्हें शिक्षित करो और उन्हें आगे बढ़ने के अवसर दो। इन्होंने स्पष्ट किया कि जब तक हम नारी को शिक्षित नहीं करते तब तक समाज को शिक्षित नहीं कर सकते और जब तक समाज को शिक्षित नहीं तब तक समाज अथवा राष्ट्र का विकास नहीं कर सकते।

व्यावसायिक शिक्षा – उपाध्याय जी ने स्पष्ट किया कि देश के आर्थिक विकास के लिये व्यावसायिक शिक्षा अतिआवश्यक है, चूँकि हमारा देश कृषि प्रधान देश है और कुटीर उद्योग प्रधान देश है इसलिये यहाँ कृषि एवं कुटीर उद्योगों की शिक्षा की विशेष व्यवस्था होनी चाहिये। आधुनिक विज्ञान और तकनीकी से भी यह वंचित नहीं रहना चाहते थे और भारी उद्योंगों के लिए इस प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था आवश्यक समझते थे। पण्डित जी व्यक्ति की आर्थिक विकास की कठिनाईयों और राष्ट्र के आर्थिक विकास के लिए व्यावसायिक एवं तकनीकी शिक्षा पर बल देते थे। इन्होंने स्पष्ट किया कि भारत कृषि प्रधान और कला–कौशलों का देश है अतः हमें सर्वप्रथम कृषि तथा कला–कौशलों (कुटीर उद्योंगो) की शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिये।

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.301
Volume 3, Issue 1, November 2023

उपसंहार – पं0 दीनदयाल जी अपने शैक्षिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये एक नियोजित व व्यवस्थित पाठ्यक्रम की योजना पर बल देते हैं। उनका मानना है कि शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये ऐसे पाठ्यक्रम की आवश्यकता है जो समयानुसार व उपयोगितानुसार व्यवस्थित व नियोजित किया गया हो। पण्डितजी ने अपने पाठ्यक्रम नियोजन में प्राचीन, नवीन, वैज्ञानिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक और भौतिक विषयों को अत्यन्त मौलिक ढंग से समन्वित किया है। पण्डित दीनदयाल जी ने शिक्षण–पद्धतियों को शिक्षक व शिक्षार्थी के मध्य सम्पर्क स्थापित करने वाली प्रक्रिया माना है। इनके अनुसार शिक्षण पद्धतियों का चयन बहुत समझदारी से करना चाहिये। इसके साथ ही शिक्षक प्रभावपूर्ण तरीके से छात्रों को अपने विषय का ज्ञान दे सके। उन्होंने अपनी शिक्षण विधियों में प्राचीन और पाश्चात्य या नवीन विधियों को स्थान दिया है पंण्डित जी विद्यालय के स्वरूप के सम्बन्ध में गुरूकुल परम्परा के पक्षधर थे और चाहते थे कि विद्यालय की स्थापना खुले और स्वच्छ वातावरण में की जाये। तथा विद्यालय को बहुत ही व्यवस्थित, अनुशासित एवं कुशलतापूर्वक अपने कार्य संगठन को संचालित करने वाला होना चाहिये। पं0 दीनदयाल जी ने शिक्षा में अनुशासन के महत्व को स्वीकार करते हुये एवं अनुशासन को जीवन का अंग मानते हुये बालक को विभिन्न सामाजिक भावनाओं से ओत–प्रोत क्रियायें कराकर उसमें सोहार्द्र और सद्भाव का निर्माण कर आत्मानुशासन या स्वानुशासित रहने की भावना के विकास पर बल दिया है। पंडित दीनदयाल जी के अनुसार शिक्षक–शिक्षार्थी सम्बन्ध प्राचीन काल से चले आ रहें हैं उनका मत है कि गुरू व शिष्य के मध्य सम्बन्ध बहुत ही आत्मीय, स्नेहिल, गरिमामय, मित्रवत्, पिता-पुत्र तुल्य तथा सम्मानजनक होने चाहिये।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- भिषीकर, चन्द्रशेखर परमानन्दः1991, द्वितीय संस्करण, "पं0 दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन" खण्ड–5 (राष्ट्र की अवधारणा), सुरुचि प्रकाशन, झण्डेवालान, नईदिल्ली–110055
- देवधर, विश्वनाथ नारायणः1987, प्रथम संस्करण ,"पं0 दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन", खण्ड–7 (व्यक्ति दर्शन), सुरुचि प्रकाशन, झण्डेवालान, नईदिल्ली–110055
- गुप्त, तनसुखरामः2005, प्रथम संस्करण,"पं0 दीनदयाल उपाध्याय महाप्रस्थान", सूर्य भारती प्रकाशन,नई दिल्ली–110006
- गर्ग, पंकज कुमारः2003, (सित0–अक्टू0),अंक–55,"दयाल पत्रिका",पं0 दीनदयाल उपाध्याय संस्थान (रजि0), मेरठ–250001
- गर्ग ,पंकज कुमारः2005, (सित0–अक्टू0),अंक–66,,"दयाल पत्रिका",पं0 दीनदयाल उपाध्याय संस्थान (रजि0), मेरठ–250001
- गर्ग, पंकज कुमारः2005, (नव0–दिस0),अंक–67,,"दयाल पत्रिका",पं0 दीनदयाल उपाध्याय संस्थान (रजि0), मेरठ–250001
- गर्ग, पंकज कुमारः2006, (जन0–फर0),अंक–68,"दयाल पत्रिका",पं0 दीनदयाल उपाध्याय संस्थान(रजि0), मेरठ–250001
- गर्ग, पंकज कुमारः2006 ,(मार्च–अप्रैल0),अंक–69,"दयाल पत्रिका",पं0 दीनदयाल उपाध्याय संस्थान(रजि0), मेरठ–250001
- जोग, बलवन्त नारायणः1991, "पं0 दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन",खण्ड–6, सुरुचि प्रकाशन,झण्डेवालान, नईदिल्ली–110055
- कुलकर्णी, शरद अनन्तः1991, द्वितीय संस्करण ,"पं0 दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन", खण्ड–4,सुरुचि प्रकाशन, झण्डेवालान, नईदिल्ली–110055
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार।

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.301
Volume 3, Issue 1, November 2023

- शर्मा, हरीदत्त:2005 ,"पं0 दीनदयाल उपाध्याय (राष्ट्रीय जीवन माला)", डायमण्ड पाकेट बुक्स, एक्स–30 ओखला फेज सैकेण्ड, नई दिल्ली
- शर्मा, महेश चन्द्र:2004, द्वितीय संस्करण, "पं0 दीनदयाल उपाध्याय" सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत पटियाला हाउस, नई दिल्ली–110001
- शर्मा रामनाथ व शर्मा राजेन्द्र कुमार:2006, द्वितीय संस्करण, "शिक्षा दर्शन", एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटरर्स, बी–2,विशाल एन्क्लेव,नईदिल्ली–110027
- ठेंगड़ी दत्तोपन्त:1991, द्वितीय संस्करण, "पं0 दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन", खण्ड–1
- (तत्वजिज्ञासा), सुरुचि प्रकाशन, झण्डेवालान, नईदिल्ली–110055 तिवारी, केदारनाथ:2006, पंचम् संस्करण, "तत्व मीमांसा एवं ज्ञानमीमांसा", मोतीलाल बनारसीदास, 41,यू0ए0बंग्ला रोड,जवाहरनगर, दिल्ली–110077
- उपाध्याय,दीनदयाल:2007, दशम् संस्करण, "राष्ट्र जीवन की दिशा", लोकहित प्रकाशन, संस्कृति भवन राजेन्द्रनगर,लखनऊ–226004